आचार्य समन्तभद्र : महत्त्वपूर्ण शंका-समाधान

-प्रो. वीरसागर जैन

शंका- समन्तभद्रादि आचार्यों ने निर्ग्रन्थ दिगम्बर वीतरागी सन्त होते हुए भी नगर-नगर में जाकर वाद/शास्त्रार्थ किये, यह क्या उचित है ?

समाधान- दरअसल, प्राचीन काल में जब कोई ज्ञानचर्चा प्रमाणों के आधार पर सुव्यवस्थित रूप में की जाती थी तो उसे ही वाद कहते थे | यह एक बड़ी ही स्वस्थ एवं पवित्र परम्परा थी, जो पूर्णत: परीक्षाप्रधानी थी | इसमें कोई पक्षपात या कषाय भाव नहीं होता था | इसका उद्देश्य विशुद्ध रूप से तत्त्व का निर्णय करना होता था | वैज्ञानिक चेतना से सम्पन्न बुद्धिजीवी लोग इसी से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति किया करते थे | अन्धश्रद्धा, भावुकता, पूर्वाग्रह, भय, आशा आदि दोषों से बचकर सत्य का साक्षात्कार करने का यही उत्तम मार्ग था | किन्तु बाद में यह मार्ग भी मलिन हो गया और लोग इसके माध्यम से भी कषाय करने लगे, अत: आज हमें ऐसी शंका हो रही है कि समन्तभद्रादि आचार्यों ने वीतरागी सन्त होते हुए भी वाद-विवाद या शास्त्रार्थ कैसे किया, अन्यथा इसमें कोई दोष नहीं है, अपितु गुण ही है और यह सब जैन दर्शन की परीक्षाप्रधानी शैली के अनुरूप उत्तम कार्य है |

शंका- ठीक है, पर वे इस कार्य के लिए नगर-नगर में क्यों जाते थे ?

समाधान- नहीं, वे इस कार्य के लिए नगर-नगर में नहीं जाते थे, अपितु वे तो अपनी मुनिचर्या के नियमानुसार सहज ही विहार करते रहते थे | उस काल में राजा लोग भी प्राय: ज्ञानानुरागी ही होते थे, जो अपनी राजसभाओं में भी प्राय: प्रतिदिन ज्ञानचर्चा करते रहते थे, अत: वे ही कभी-कभी सत्य को पूर्ण ईमानदारी से समझने के लिए ऐसा निष्पक्ष आयोजन रखा करते थे | समन्तभद्रादि आचार्य सहज ही विहार करते हुए ऐसे आयोजनों में पहुंच जाते थे और अपनी प्रस्तुति से सभी को प्रभावित करते थे | अत: इसमें कोई दोष नहीं है, अपितु गुण ही है |

शंका- वे आखिर ऐसी कौन-सी बात कहते थे कि जिससे सभी शंकाओं का सुन्दर समाधान हो जाता था ?

समाधान- स्याद्वाद ही एक ऐसी अचूक औषध थी उनके पास, जिससे सर्व समस्याओं का सुन्दर समाधान हो जाता था | संसार की सारी समस्याएँ एकान्तवाद से उत्पन्न होती हैं, अत: उनका समाधान भी अनेकान्तवाद में ही निहित होता है | समन्तभद्रादि आचार्य इस रहस्य को भलीभांति

समझ चुके थे | यही कारण है कि वे अपनी प्रस्तुति से सभी को प्रभावित करते थे, सभी की शंकाओं का सुन्दर समाधान कर देते थे |

शंका- क्या आचार्य समन्तभद्र के नमस्कार से सचमुच ही शिवपिण्डी फट गई थी और उसमें से चन्द्रप्रभ तीर्थंकर की प्रतिमा प्रकट हुई थी ?

समाधान- हाँ, उनकी कहानी में सर्वत्र ऐसा ही वर्णन आता है, अत: इस घटना को मिथ्या कहने का कोई अर्थ नहीं है; किन्तु यहाँ मुझे ऐसा लगता है कि वस्तुतः यह एक साहित्यिक या आलंकारिक कथन है | यद्यपि यह कार्य उनके किसी मन्त्र का प्रभाव या कोई दैवी चमत्कार के रूप में यथावत् भी हो सकता है; परन्तु मुझे इसके यथावत् होने की अपेक्षा साहित्यिक या आलंकारिक कथन होने की ही सम्भावना अधिक लगती है | मैंने देखा है कि ऐसे साहित्यिक प्रयोग अन्यत्र भी अनेकानेक कथाओं में बहुत हुए हैं | अत: मेरे हिसाब से हमें इसे हू-ब-हू ऐसी की ऐसी ही अभिधा रूप में घटित हुई घटना नहीं माननी चाहिए, अपितु एक लाक्षणिक प्रयोग समझना चाहिए, जिसके अनुसार इसका अर्थ कुछ ऐसा हो सकता है कि आचार्य समन्तभद्र ने राजा को, जो कि कट्टर शिवभक्त था, ऐसा उपदेश दिया होगा कि उसने शैव धर्म को त्यागकर जैन धर्म अपना लिया होगा | इसी बात को जनता ने ऐसा कहा होगा कि आचार्य समन्तभद्र ने तो आज शिवपिण्डी को फोड़कर उसमें चन्द्रप्रभ प्रकट कर दिये | चन्द्रप्रभ इसलिए, क्योंकि यह घटना चन्द्रप्रभ की जन्मभूमि चन्द्रपुरी वाराणसी में घटित हो रही थी |